ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

दण्ड की पराकाष्ठा है मृत्युदण्ड

(अमेरिका के कार्लोस डेलुना को 8 दिसम्बर 1989 को दिया गया गैरवापसीय मृत्युदण्ड भी लाया दण्ड की पराकाष्ठा)

राजेश बहुगुणा
प्राचार्य एवं डीन,
लॉ कालेज देहरादून,
उत्तरांचल विश्वविद्यालय,
देहरादून

सुमेर चन्द रवि
विधि शोध छात्र,
उत्तरांचल विश्वविद्यालय,
देहरादून

सारांश

प्रस्तुत लेख "दंड की पराकाष्ठा है मृत्युदण्ड" में संक्षिप्त रूप में सर्वप्रथम यह बताने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन भारत, मुगलकाल और ब्रिटिश काल में मृत्युदण्ड की व्यवस्था किस–किस प्रकार से थी। मृत्युदण्ड का आधुनिक समय में विश्वस्तरीय प्रयोग अर्थात् अब तक विभिन्न महत्वपूर्ण देशों में दिये गये मृत्युदण्ड और जिन देशों द्वारा मृत्युदण्ड को नकार दिये जाने का निर्णय लिया गया है उनकी जानकारियाँ तथा वर्तमान में प्रसिद्ध अधिवक्ता प्रशान्त भूषण, विशेषकर दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश राजेन्द्र सच्चर तथा माननीय सांसदों द्वारा समय–समय पर मृत्युदण्ड को समाप्त किये जाने के विचार संक्षिप्त रूप में संकलित करते हुए शोधकर्ताओं किमो सुआमिनेन द्वारा मृत्युशास्ति के सम्बन्ध में चार मिथक, अरूणजीव सिंह वालिया द्वारा "मृत्युदण्ड समाप्ति की राह पर" में मृत्युदण्ड को संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 21 में संरक्षित मूल अधिकारों में जोड़कर देखा जाना, आकाश नागर एवं चानन परवानी के "भारत में मृत्युदण्ड – इसके प्रतिरोधात्मक प्रभाव का एक निर्धारण" पर दिये गये शोधपूर्ण विचार, अंजली ठाकुर द्वारा "मृत्युदण्ड एवं इसकी प्रासंगिकता" पर प्रस्तुत विशेष शोध के तथ्यात्मक विचार, राजीव कुमार द्वारा "बलात्कार के लिये मृत्युदण्ड" पर प्रस्तुत विचार तथा विधि आयोग की 172वीं रिपोर्ट पर आधारित बलात्कार सम्बन्धी नियमों में अनेक परिवर्तनों की अपेक्षित संस्तुति, अरूण जीव सिंह वालिया तथा विनय नायडू द्वारा प्रस्तुत "जनमत तथा मृत्युशास्ति – मार्ग अवरूद्ध होने की दशा में समापन का पथ" पर उनके द्वारा दिये गये "मृत्युशास्ति के तत्व की सांवैधानिकता पर उच्चतम न्यायालय चिपका न रहे" आदि विचार सम्मिलित करते हुए मृत्युदण्ड को "दण्ड की पराकाष्ठा" सिद्ध कर एक नवीन विश्लेषणात्मक तथ्य के रूप में प्रस्तुत करते हुए मृत्युदण्ड की सांवैधानिकता सिद्ध करने वाले कुछ महत्वपूर्ण दृष्टांतों को स्थापित कर लेख को विधिक रूप से औचित्यपूर्ण बनाया गया है।

मुख्य शब्द : मृत्युदण्ड, संविधान, अपराधी

प्रस्तावना

मृत्युदण्ड से तात्पर्य ऐसे दण्ड से है जिसमें अपराधी के जीवन को समाप्त कर दिया जाता है।[1] यह दण्ड की पराकाष्ठा का ही परिणाम है। ऐसा दण्ड प्रायः गंभीर एवं संगीन अपराधों के लिए ही दिया जाता है। सामान्यतः दण्ड की मात्रा और उसका निर्धारण अपराध की गंभीरता तथा उसके कारण समाज को उत्पन्न होने वाले संभावित संकट पर निर्भर करती है। अपराधी के आपराधिक प्रवृत्ति के अनुसार उसे कम या अधिक दण्ड दिया जाता है। दाण्डिक विधिशास्त्र के निरपेक्ष विश्लेषण से यह पता चलता है कि मृत्युदण्ड केवल हत्या या बलात्कार सहित जघन्य अपराधों के लिए ही दिया जाना उचित है जिनके कारण समाज के लिए गंभीर संकट उत्पन्न होने की संभावना होती है। इसीलिए अति विरल मामले में ही मृत्युदण्ड दिया जाता है ताकि अवांछित तथा समाज के लिए खतरनाक अपराधियों का अस्तित्व समाप्त किया जा सके। इसके साथ–साथ मृत्युदण्ड उन सब अपराधिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों के लिए भी एक उदाहरण होता है ताकि वे भविष्य में ऐसे अपराधों से अपने आपको विरक्त रखें। भारतीय दण्ड नीति में भी मृत्युदण्ड के प्रति यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

एमनेस्टी इंटरनेशनल, मानवाधिकार आयोग के मृत्युदण्ड के विरूद्ध चल रहे विचारों, गाँधी के अहिंसावादी चिंतन तथा संविधान वेत्ता डॉ0 अम्बेडकर के मृत्युदण्ड न दिये जाने सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करते हुए मृत्युदण्ड की अमेरिका के कार्लोस डेलुना को 8 दिसम्बर 1989 को दी गई मृत्युदण्ड की सजा

तब दंड की गैरवापसीय स्थिति उत्पन्न कर देती है जब अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय द्वारा शोध कर यह पता लगा लिया जाता है कि कार्लोस डेलुना वास्तविक हत्यारा नहीं था। प्रस्तुत लेख में दूषित पहचान, अपर्याप्त स्थितिजन्य साक्ष्य, दूषित साक्ष्य, मिथ्या साक्ष्य और अविश्वसनीय विशेषज्ञ साक्ष्य आदि उपरोक्त विवेचनात्मक बिन्दुओं की गंभीर उपस्थिति में कार्लोस डेलुना केस की तरह मृत्युदण्ड अवापसीय कैसे हो जाता है यह सिद्ध करने और इससे बचने के पूर्व प्रतिपादित इस तथ्य कि "मृत्यु का दण्डादेश न्याय के विपरीत कार्य करता है, क्योंकि दाण्डिक न्याय का महत्वपूर्ण उद्देश्य अपराधी का सुधार और उसे पुनर्वास प्रदान करना है। मृत्यु का दण्डादेश इस उद्देश्य को अपनी अस्वीकृति प्रदान करता है।" इस तथ्य को प्रमुखता देते हुए प्रस्तुत लेख में मृत्युदण्ड को "विरल से विरलतम" मामलों में ही दिये जाने की सांवैधानिक व्यवस्था के उपरान्त भी मृत्युदण्ड की गैरवापसीय स्थिति को गंभीर मानते हुए मृत्युदण्ड दिये जाने की सांवैधानिक स्थिति को स्वीकार न किये जाने की स्थिति को स्पष्ट रूप से सिद्ध किये जाने के उद्देश्य और उसके अन्तिम विकल्प आजीवन कारावास को ही दाण्डिक न्याय व्यवस्था के अनुरूप "अपराधी का सुधार और पुनर्वास" तथा दण्ड के भय की स्थिति और समाज में उसके स्थायी प्रभाव को प्राथमिकता दिये जाने के विचार को विधिक न्याय के लिए आवश्यक रूप से सिद्ध किये जाने तथा मृत्युदण्ड की गैरवापसीय स्थिति के कारण "मृत्युदण्ड को दण्ड की पराकाष्ठा" सिद्ध करने के महत्वपूर्ण उद्देश्य के साथ मृत्युदण्ड के अन्तिम वैकल्पिक दण्ड आजीवन कारावास की उद्देश्यपरक संस्तुति पर जोर दिया गया है। उपरोक्त तथ्यों से सिद्ध होता है कि "दण्ड की पराकाष्ठा है मृत्युदण्ड" यही महत्वपूर्ण तथ्य है जिसे सिद्ध करना प्रस्तुत लेख का उद्देश्य रहा है।

वर्तमान संदर्भ में 22 अप्रैल 1968 से 13 मई 1968 तक तेहरान में आयोजित मानव अधिकार सम्मेलन में मृत्युदण्ड समाप्त किये जाने की विगत 20 वर्षों की प्रगति की समीक्षा की गई।[2] तेहरान सम्मेलन के 25 वर्ष पश्चात् 14 जून 1993 से 25 जून 1993 तक आयोजित विश्व मानवाधिकार सम्मेलन (वियना सम्मेलन) आयोजित किया गया जिसे मृत्युदण्ड समाप्ति के प्रयासों और मानवअधिकारों से सम्बन्धित वियना घोषणा भी कहा गया के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय दण्ड विधि कांग्रेस के अधिवेशनों में विधि विशेषज्ञों और संविधान वेत्ताओं तथा भारत की संसद के कुछ महत्वपूर्ण सांसदों द्वारा मृत्युदण्ड को समाप्त किये जाने और कुछ के द्वारा मृत्युदण्ड को विशेषकर भारत के संदर्भ में रखे जाने का भी पुनरावलोकन करते हुए पुनः गहन अध्ययन कर शोध की आवश्यकता बताई है।

हमने देखा प्रत्येक अपराध के लिए मृत्युदण्ड दिये जाने के विभिन्न तरीके अपनाये जाते रहे हैं।[3] विश्व की प्रायः सभी दण्ड प्रणालियों में प्राचीन काल से ही अपराधियों को मृत्युदण्ड दिये जाने का प्रचलन रहा है तथापि मृत्युदण्ड के क्रियान्वयन के तरीके अलग–अलग अवश्य थे। कहीं जल्लाद अपराधी का सिर कलम कर देते थे तो कहीं अपराधी को दीवारों में चुनवा दिया जाता था। प्राचीन समय से लेकर आज तक मृत्युदण्ड के लिये उपयोग में लाये जाने वाले विभिन्न तरीके मुख्यतः निम्नाननुसार हैं–

1. दम घोंटकर मृत्युदण्ड देने में अपराधी के शरीर में ऑक्सीजन की आपूर्ति पूरी तरह बन्द कर दी जाती है ताकि दम घुटने के कारण उसकी मौत हो जाये।
2. ऐसे अपराधी जो तंत्र, मंत्र आदि द्वारा दूसरों को नुकसान पहुँचाते हैं, उनके शरीर के प्रमुख अंग निकालकर उन्हें मौत की सजा दी जाती थी लेकिन ब्रिटेन में कोई अपराधी स्त्री होती, तो ऐसा न करते हुए उसका सम्मान बनाये रखने के लिए उसे जिन्दा जला दिया जाता था।
3. जो व्यक्ति मासूम लोगों की बर्बतापूर्ण ढंग से हत्या कारित करता था उसे सूली पर टाँगकर मृत्युदण्ड दिया जाता था ताकि उसे यह अहसास हो कि जिस व्यक्ति को उसने यातना देकर मार डाला है उसे कितना कष्ट हुआ होगा।
4. अनेक अविकसित देशों में हत्यारे को कुचल कर मार डाला जाता था।
5. बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक चीन में अपराधी को हफ्तों या महीनों तक प्रतिदिन छोटे–छोटे घाव कर दिये जाते थे ताकि वह कष्ट झेलते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाए।
6. मध्यकालीन युग में सिर कलम करके मृत्युदण्ड देना प्रचलन में था। इसके लिए प्रायः तलवार या कुल्हाड़ी का प्रयोग किया जाता था।
7. हाथ पैर काटकर या उन्हें शरीर से उखाडकर भी सजाए–मौत देने का तरीका प्रचलित था।

अब तक भारत में मृत्युदण्ड दिये जाने के कालखण्ड को विशेषकर तीन खण्डों में विभक्त किया जा सकता है –

1. प्राचीन भारत में मृत्युदण्ड
2. मुगलकाल में मृत्युदण्ड
3. ब्रिटिशकाल में मृत्युदण्ड

प्राचीन भारत में मृत्युदण्ड[4]

भारतीय समाज में दंड विधान व इसकी अवधारणा अत्यन्त प्राचीनकाल से अस्तित्व में है। विश्व में प्रचलित सभी दण्ड व्यवस्थाओं में मृत्युदण्ड निश्चित रूप से सबसे कठोरतम दण्ड है। समाज में दण्ड की अवधारणा इसलिये स्थापित की गई है कि इससे भय उत्पन्न होता है और यही भय समाज में आपराधिक मानसिकता पर अंकुश लगाकर लोगों को सभ्य नागरिक बने रहने के लिए बाध्य करता है। प्राचीनकाल से आज तक विश्व में जितनी भी सभ्यतायें अस्तित्व में रहीं उनमें दण्ड विधान किसी न किसी रूप में अवश्य ही अस्तित्व में रहा। दण्ड विहीन तंत्र में समाज के निरंकुश हो जाने की प्रबल संभावना बनी रहती है। भय मुक्त और सुरक्षित समाज के लिए ही विभिन्न दंडों के साथ–साथ मृत्यु दण्ड की व्यवस्था भी आदिकाल से चली आ रही है। भारत में मृत्युदण्ड को मानवीय एवं प्रासंगिक मानने वालों का तर्क है कि भारत के विकासशील देश होने के कारण यहाँ के समाज में अर्द्धशिक्षित एवं अर्द्ध सामंती परिवेश आज भी व्यापक रूप से विद्यमान है जिस कारण यहाँ की चुनौतियाँ

विकसित राष्ट्रों के समाज से सर्वथा भिन्न हैं जिस कारण यहाँ मात्र गंभीर एवं असाधारण प्रकृति के अपराधों के लिए ही मृत्युदण्ड का प्रावधान होना चाहिए। यदि मृत्युदण्ड की व्यवस्था समाप्त कर दी जायेगी तो अपराध से दूर रखने वाला आंतरिक भय स्वतः समाप्त हो जायेगा और गंभीर किस्म के जघन्य एवं असाधारण अपराधों में अत्यधिक वृद्धि हो जायेगी।

प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में दण्ड एवं न्याय की व्यवस्था मौजूद रही है चाहे वह मनु का समय रहा हो या राम का। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में न्याय एवं दंड विधान देखने को मिलता है।

अपराधी के विभाजन के आधार पर ही दंड का विधान भी देखने को मिलता है। मनु ने हमला, चोरी, लूट, मिथ्या साक्ष्य, मानहानि, आपराधिक न्याय दंड, छल, जारता और बलात्कार को अपराध माना। न्याय, निर्णय, शासक स्वयं करता था तथा वह इस कार्य में अपनी सहायता के लिए न्यायाधीश (मीमांसक) की नियुक्ति करता था। अपराधी से वसूली गई अर्थदण्ड की धनराशि राज्यकोष में जमा करा दी जाती थी।

भारतीय दंड विधि में हिन्दू अपराध विधि का संक्षिप्त अध्ययन –हिन्दू अपराध विधि का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है इसका आभास प्राचीन धर्मग्रन्थों से ही हो जाता है। उस समय अपराध को पाप समझा जाता था, दण्ड को सामाजिक सुरक्षा का साधन समझा जाता था। अतः दण्ड साधन माना जाता था, लक्ष्य नहीं। जिसका उद्देश्य सामाजिक शांति बनाये रखना था। उस समय की दण्ड व्यवस्था में चार प्रकार के दण्डों का प्रावधान था–

वाक् दण्ड

बोलने सम्बन्धी बाध्यताओं के दण्ड की व्यवस्थाओं से सम्बन्धित था यह दण्ड जिसमें वाक सीमा निर्धारित थी।

चेतावनी दण्ड

अपराधी को चेतावनी देकर कह दिया जाता था कि भविष्य में उसके द्वारा अमुक अपराध न किया जाये।

अर्थदण्ड

इस व्यवस्था में अपराधी को दण्ड की प्रतिपूर्ति अर्थ से करनी होती थी।

कारावास, बन्दीकरण दण्ड

गम्भीर अपराध कर दिये जाने पर अपराधी को कारावास अथवा बंदीगृह में डाल दिया जाता था।

मृत्युदंड

अपराधी द्वारा किसी जघन्य अपराध अथवा हत्या के अपराध पर मृत्युदण्ड दिया जाता था।

किसी व्यक्ति के प्रथम बार अपराध करने पर वाक्दण्ड का प्रावधान था। किसी स्त्री के प्रति किये गये अपराध जैसे आलिंगन करना, बुरी नीयत रखना आदि के लिए गंभीर दंडों का प्रावधान था। किसी स्त्री का शील भंग करने अथवा बलात्कार करने पर दोषी व्यक्ति के गुप्तांग काट दिये जाते थे और सम्पत्ति जब्त कर लिये जाने का प्रावधान था। अपराधी दोषी होने अथवा न होने के लिये उसकी अग्नि परीक्षा ली जाती थी। हत्या जैसे जघन्य अपराध के लिए मृत्युदण्ड दिया जाता था। इन सभी बातों को देखते हुए हिन्दू विधि की कठोरता का आभास भी है।

मुगलकाल में मृत्युदण्ड [5]

भारतवर्ष में मुगल शासन काल में भारत में मुस्लिम दंड विधि लागू थी। भारत में अंग्रेजों के शासनकाल से पूर्व दण्ड शासन व्यवस्था मुस्लिम दंड विधि के अनुसार होती थी। यह व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक आयुक्तियुक्त, प्रतिशोधक और पक्षपातपूर्ण थी। मुस्लिम दण्ड विधि में अपराधों के अनुसार दण्ड का वर्गीकरण मुख्यतः चार प्रकार से होता था।

किसा (बदला)

किसा का शाब्दिक अर्थ है बदला। इस व्यवस्था के अनुसार पीड़ित पक्ष को अधिकार होता था कि वह अपराधी को अपराध के आधार पर दण्ड दे अर्थात् जैसा अपराध किया है उसकी सजा वैसे होगी। खून का बदला खून और हाथ काटने का बदला हाथ काटने वाला सिद्धान्त लागू था।

दिया (खून का मूल्य)

दिया का अर्थ है खून का मूल्य। इस श्रेणी में व्यक्ति द्वारा अनजाने में किये गये अपराध आते थे। यदि पीड़ित पक्ष चाहता था तो वह उस अपराध का मूल्य धनराशि के रूप में प्राप्त कर सकता था। पीड़ित पक्ष या उसका वारिस 'किसा' अथवा 'दिया' कोई भी दण्ड अपराधी के लिए चुन सकता था।

हद (सीमा)

विशेष प्रकार के गंभीर अपराधों के लिए मुस्लिम विधि में इस श्रेणी के अन्तर्गत दण्ड की सीमा निर्धारित कर दी गई थी। इसके अन्तर्गत दण्ड को बदला नहीं जा सकता था। इसके अन्तर्गत बलात्कार और परस्त्रीगमन, चोरी, डकैती, हत्या आदि के अपराध आते थे और अपराधी को कोड़े या पत्थर मार–मार कर जान लेने का दण्ड दिया जाता था।

ताजिर (विवेकाधीन)

इस विवेकाधीन दण्ड को ताजिर शब्द से सम्बोधित किया गया। इस श्रेणी के अन्तर्गत दण्ड न्यायाधीश के विवेक पर निर्भर करता था। यह दण्ड ऐसे अपराधों पर दिया जाता था जिसके लिए 'हद' या 'किसा' दण्ड निर्धारित नहीं होते थे। ताजिर के अन्तर्गत अपराधी को कारावास, देश निकाला, भर्त्सना, अपमानजनक व्यवहार जैसे मुख पर कालिख पोतना, सिर के बाल मुंडवाकर घुमाना आदि तरीकों से दंडित किया जाता था।

सियासत (क्रूर)

कुछ जघन्य अपराधों के लिए अपराधियों को हद के भीतर निर्धारित दण्ड से भी ज्यादा दंड देने की व्यवस्था थी। यह अत्यन्त बर्बरतापूर्ण व क्रूर थी।

ब्रिटिश काल में मृत्युदण्ड[6]

ब्रिटिश दंड विधि की स्थापना सर्वप्रथम ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना वर्ष 1600 में की गई थी तथा उस समय से ब्रिटिश दंड विधि कार्य में आने लगी थी। यद्यपि उस समय मुस्लिम विधि लागू थी और बहुत ही कठोर एवं संकुचित थी। इस कारण धीरे–धीरे ब्रिटिश शासकों ने उसमें बड़े परिवर्तन किये। भारतीय दंड संहिता के पारित होने तक यह विधि नाम की ही रह गई थी।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारत में अनेक राजपत्र जारी कर दीवानी, निजामत, फौजदारी न्यायालयों की स्थापना की गई। फौजदारी न्यायालयों में अंग्रेज न्यायाधीश काजी और मुफ्ती की सहायता से देशी भारतीयों के मुकदमे निपटाते थे। जिला कलेक्टर इन अदालतों की कार्यप्रणाली पर निगरानी रखता था। सन् 1773 के राजपत्र द्वारा फोर्ट विलियम कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट ऑफ ज्यूडीकेचर की स्थापना की गई जिसे फौजदारी, दीवानी, धार्मिक, सामुद्रिक आदि मुकदमे निपटाने का अधिकार प्राप्त था। तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड कार्नवालिस की तृतीय न्यायिक योजना सन् 1793 के अन्तर्गत दंड विधि प्रशासन में व्यापक सुधार किये गये। न्यायालयों को अपराधिक मामलों में जुर्माना व सजा करने की शक्ति दी गई। सत्र न्यायधीश को मृत्युदंड देने का अधिकार था जिसकी पुष्टि सदर निजामत अदालत द्वारा की जाती थी। अपराधी न्याय प्रशासन को मजबूत और प्रभावी बनाने के लिए सन् 1834 में भारतीय विधि आयोग का गठन किया गया जिसमें दंड विधि को निश्चित बनाये जाने की दिशा में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये तत्पश्चात् 26 अप्रैल 1845 को गठित दूसरे विधि आयोग ने दंड संहिता का प्रारूप तैयार किया जिसे 6 अक्टूबर 1860 में विधान मंडल ने पारित कर दिया और भारतीय दंड संहिता के रूप में 1 जनवरी 1862 से समस्त भारत में लागू हुआ। यह संहिता आज भी भारतीय दंड विधि के रूप में प्रभावशाली है।

मृत्युदण्ड का विश्व में प्रयोग

इतिहास में अनेक सभ्यताओं में मृत्युदण्ड का नाम आता है।[7] प्राचीन यूनानी, मिश्र, चीनी और भारतीय सभ्यताओं में इस दण्ड के संदर्भ मिलते हैं। लेकिन उस समय उसे देने के विचित्र तरीके हुआ करते थे। द्वितीय विश्व युद्ध से मृत्युदण्ड उन्मूलन हेतु लगातार प्रयास होते रहे हैं। 1977 में 6 देशों ने इसे निषेध किया था। वर्तमान स्थिति यह है कि 95 देशों ने मृत्युदण्ड निषेध कर दिया है। 9 देशों ने इसे अन्य सभी अपराधों के लिए निषेध किया है सिवाय विशेष परिस्थितियों के 37 देशों ने पिछले 10 वर्षों में किसी को आरोपित नहीं किया, अन्य 58 देशों ने इसे पूरी तरह लागू किया हुआ है। एमनेस्टी इंटरनेशनल के अनुसार भले ही मलेशिया और उत्तर कोरिया ने मृत्युदंड दिये जाने सम्बन्धी आंकडे न भी बताये हों तथापि 2009 में 18 देशों ने कम से कम 714 मृत्युदण्ड दिये हैं और लागू भी किये हैं। 2009 में फांसियाँ देने वाले देशों का क्रम –

1. चीन – आधिकारिक आंकडे यद्यपि प्रदर्शित नहीं है फिर भी कम से कम 1700–5000,
2. ईरान – कम से कम 388, 3. इराक – कम से कम 120, 4. साउदी अरब – कम से कम 69, 5. संयुक्त राज्य – कम से कम 52, 6. यमन कम से कम – 30, 7. सूडान कम से कम 9, 8. वियतनाम कम से कम – 9, 9. सीरिया कम से कम –8, 10.जापान कम से कम – 7 11. मिस्र कम से कम – 5 12. लीबिया कम से कम – 4
13. बांग्लादेश कम से कम – 3, 14. थाईलैण्ड कम से कम – 2, 15. सिंगापुर कम से कम – 1, 15. बोत्स्वाना कम से कम – 1

न्यायमूर्ति सच्चर ने मृत्युदण्ड समाप्त करने का पक्ष रखते हुए कहा कि 1950 से अब तक केवल 157 अपराधियों को फाँसी के फन्दे पर लटकाया गया ऐसा नहीं कि इसे समाप्त कर देने से अपराध की घटनाओं में बढ़ोत्तरी होगी। उन्होंने सजा की मृत्युदण्ड पद्धति को अमानवीय करार देते हुए कहा कि दुनिया के जिन देशों ने मृत्युदण्ड को समाप्त करने का फैसला लिया है वहाँ भी अपराध नियंत्रित हैं।[8] महात्मा गाँधी ने कहा था कि मैं मृत्युदण्ड को अहिंसा विरूद्ध मानता हूँ। अहिंसा से परिचालित व्यवस्था हत्यारे को सुधारगृह में बंद कर सुधरने का मौका देगी। डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ने भी कहा था कि "मैं मृत्युदण्ड खत्म करने के पक्ष में हूँ। एक मानव अधिकार कार्यकर्ता होने के नाते मुझे लगता है कि जब भी कहीं कोई व्यक्ति फाँसी पर लटकाया जाता है तो वह अकेला नहीं बल्कि उसके साथ उसके मानव अधिकार भी सूली पर टाँग दिये जाते हैं।" जाने माने अधिवक्ता प्रशान्त भूषण और दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश राजेश सच्चर ने जहाँ मृत्युदण्ड को समाप्त करने की वकालत की है, अधिवक्ता प्रशान्त भूषण ने फाँसी की सजा को सरकार की तरफ से हिंसा करार देते हुए कहा कि इससे हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती है। उन्होंने कहा "दरअसल हम ऐसा मान लेते हैं कि फाँसी के डर की वजह से हिंसा कम होगी लेकिन ऐसा नहीं होता। उन्होंने कहा कि सजा का उद्देश्य सुधारात्मक होना चाहिए न कि जीवन इहलीला समाप्त करना।"

इस प्रकार उपरोक्त आंकडों से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपरोक्त मृत्युदण्ड की प्राचीन व्यवस्थाओं को अध्ययन में समेटे हुए विशेषकर द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त मृत्युदण्ड के आधारों पर किये गये तीव्र परिवर्तनों पर दृष्टिपात कर किमो सुआमिनेन द्वारा "मृत्यु शास्ति के सम्बन्ध में चार मिथक" पर शोध किया गया जिसमें उन्होंने प्रथम : मृत्युशास्ति के परिणाम से समाज में मानव वध, हत्याओं और गम्भीर अपराधों की दरों में कमी आती है। दूसरा : निर्दोष व्यक्तियों को मृत्युशास्ति परीक्षणों में दोष सिद्ध नहीं किया जाता है। तीसराः आजीवन कारावास की तुलना में मृत्युदण्ड दिया जाना सस्ता है एवं चौथाः मृत्युदंड सम्बन्धी मामलों में दोष सिद्ध की संभावनायें हर व्यक्ति के लिए जिसमें शामिल हैं गरीब, न्यून शिक्षित, जातिगत अल्पसंख्यक और धार्मिक अल्पसंख्यक आदि सभी के लिए समान रहती हैं। उन्होंने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि अपराध के सम्बन्ध में कठोर होना नहीं चलता है क्योंकि पश्चिमी देशों में संभवतः पूरे विश्व में अत्यन्त हिंसात्मक वह देश है जो मृत्युशास्ति का चलन अपनाये हुए है और सामान्यतः सबसे अधिक नियम और दंड रखता है।[9]

अरूणजीव सिंह वालिया द्वारा "मृत्युदण्ड समाप्ति की राह पर" विषयान्तर्गत शोध कर बताया गया कि मृत्युदण्ड देने में विलम्ब करना मूल अधिकारों का अतिक्रमण है एवं उनका मत है कि फाँसी के लिए प्रतीक्षा करना क्रूरता एवं अमानवीयता है। कई ऐसे उदाहरण

प्रस्तुत कर उन्होंने बताया कि जब फाँसी की सजा सुनाये जाने के बाद अनेकों वर्षों तक उन्हें फाँसी नहीं दी गई। उन्होंने मृत्युदण्ड को संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 में सुरक्षित मूल अधिकारों से जोड़कर देखा है। अन्ततः न्याय की दुलर्भ से दुलर्भतम श्रेणी में ही मृत्युदण्ड की संस्तुति की जानी चाहिए ऐसा अभिमत उन्होंने व्यक्त करते हुए राजनीतिक कैदियों को मृत्युदण्ड दिये जाने सम्बन्धी मामलों का अध्ययन कर इसके अध्ययन किये जाते रहने की आवश्यकता बताई है।[10]

आकाश नागर एवं चानन परवानी ने भी प्राचीन एवं आज तक की विश्व स्तरीय मृत्युदण्ड व्यवस्थाओं का संज्ञान लेते हुए "भारत में मृत्युदण्ड – इसके प्रतिरोधात्मक प्रभाव का एक निर्धारण" विषय पर शोध कर निष्कर्ष दिया कि प्रथम क्या मृत्युदण्ड समाप्त कर दिया जाना चाहिए? दूसरा क्या किसी राज्य को किसी व्यक्ति का जीवन लेने का अधिकार है? तीसरे क्या राज्य के किसी व्यक्ति का जीवन लेने सम्बन्धी अधिकार से मानव के प्राकृतिक अधिकार का उल्लंघन होता है? उन्होंने आगे निष्कर्ष दिया कि मृत्युदण्ड की प्रतिरोधात्मकता को बनाये रखा जाना चाहिए इसमें विधि प्रवर्तन अभिकरणों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उन्होंने कहा कि इनकी कार्य साधकता और अपूर्णता सभ्य समाज में महत्वपूर्ण होती है जिसके लिए विधिक एवं प्रक्रियात्मक सुधारों का लाया जाना आवश्यक है। उन्होंने कतिपय मामलों में अस्पष्ट विधिक द्वयअर्थक निर्वचन की वजह से मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अभिकथन की आवश्यकता बताई है।[11]

मृत्युदण्ड एवं इसकी अप्रासंगिकता" पर एक विशेष शोध निष्कर्ष में अंजली ठाकुर द्वारा मृत्युदण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर पांचवी शताब्दी से लेकर वर्तमान काल तक मृत्युदण्ड के विभिन्न तरीकों एवं उनके औचित्य पर प्रकाश डाला और उपरोक्त प्राचीनकाल से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त विश्वस्तरीय मृत्युदण्ड की व्यवस्थाओं का तथा परिवर्तनशील स्थितियों का गहन अध्ययन कर संज्ञान लेते हुए सारांशतः मृत्युदण्ड को मानवीय न्याय नहीं समझे जाने की श्रेणी का पक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने व्यक्ति में बदलाव लाने के लिए आजीवन कारावास को न्यायोचित्त ठहराते हुए कहा कि इसकी संस्तुति की जाए। उन्होंने वैश्विक आधार पर मृत्युदण्ड को समाप्त करने के लिए भारत को विचार करने की आवश्यकता पर जोर दिया।[12]

"बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड" विषय पर राजीव कुमार द्वारा विधि आयोग की 172वीं रिपोर्ट के परिप्रेक्ष्य में सम्पन्न किये गये शोध में उन्होंने निष्कर्ष दिया कि बलात्कार सम्बन्धी नियमों में अनेक परिवर्तनों की संस्तुति अपेक्षित है। उन्होंने कहा कि बलात्कार को उन दुलर्भ से दुलर्भ अपराधों की श्रेणी में रखा जाये जिनमें मृत्युदण्ड दिया जाना न्यायोचित है। उन्होंने बलात्कार के कारणों व उसके परिणामों के परिप्रेक्ष्य में मृत्युदण्ड की संस्तुति की है। [13]

"जनमत तथा मृत्युशास्तिः मार्ग अवरूद्ध होने की दशा में समापन का पथ" शोध विषय वस्तु के माध्यम से अरूण जीव सिंह वालिया, गौनसाल्वेज तथा विनय नायडू द्वारा यह निष्कर्ष दिये कि जनमत के कई स्तर हैं। इसे भिन्न–भिन्न रूप में महसूस किया जा सकता है। मसलन रायशुमारी (ओपिनयन पोल) में जिसमें मृत्युशास्ति के लिए आमतौर पर जनता का समर्थन मिलता है। परामर्शी निकायों में जो मृत्युशास्ति रखी जानी चाहिए या समाप्त कर दी जानी चाहिए में जनता के विचार प्राप्त करते हैं। कार्यपालिका/विधान मण्डल और न्यायपालिका के निर्णयों में जो जनमत का उल्लेख करे और न्यायपीठों जो समुदाय के प्रत्यक्ष प्रतिनिधियों के रूप में काम करते हैं और जब जनमत मृत्युशास्ति का सर्वाधिक समर्थनकारी लगता है तो पोलों को और अन्य सूचकों की जाँच करना जरूरी हो जाता है ताकि यह समझा जा सके कि जनमत मृत्युशास्ति के अवधारण और समापन को कैसे प्रभावित कर सकता है? उन्होंने कहा कि इस प्रकार उन रायशुमारी पोलों के सूक्ष्म विश्लेषण से जो मृत्युशास्ति का समर्थन करते हैं यह पता चलता है कि जनता आजीवन कारावास के लिए विकल्पीय दण्डादेश चाहती है और जब बार–बार यह कहा जाता है कि मृत्युशास्ति को रखे रखने की प्रेरणा जनमत से मिलती है तो इससे यह स्पष्ट है कि मृत्युशास्ति का प्रयोग अमेरिका और राष्ट्रमंडल अफ्रीका में राजनीतिज्ञों द्वारा राजनैतिक मुद्रा के रूप में भी किया जाता है। उन्होंने कहा कि भारत में भी वोट प्राप्त करने के लिए और निर्वाचक मण्डल के सदस्यों को खुश करने के लिए थोड़ा बहुत ऐसा जरूर होता है अर्थात् राजनीतिक प्रभाव डाला जाता है। उन्होंने कहा कि अमेरिका, राष्ट्रमण्डल अफ्रीका और भारत के बीच दो महत्वपूर्ण भेद हैं। राष्ट्रमण्डल में कार्यपालिका का रूख मृत्युशास्ति समापन की दिशा में अधिक स्पष्ट है। उदाहराणार्थ जाम्बिया और केनिया में जनमत के समर्थन बिना मृत्युशास्ति को समाप्त करने के लिए तैयार नहीं है जबकि भारत में जनमत के सम्बन्ध में विश्वसनीय अध्ययन कम हुआ है। परन्तु एक ऐसे समाज में जो हमेशा अभिशेष (मुठभेड) मृत्यु सहन करता है उसकी सोच आश्चर्यचकित करने वाली है कि जनता मजबूती से मृत्युदण्ड का समर्थन करे।[14]

भारत में न्यायपालिका का चुनाव जनता द्वारा नहीं किया जाता जो कि न्यायपालिका और कार्यपालिका के सम्मिलित रूप से किया जाता है और शायद इसी कारण से भारत मृत्यु शास्ति समापन की दिशा में चल रहा है। जबकि न्यायपालिका कभी–कभी कार्यपालिका के संरक्षण में अतिक्रमण कर देती है जो कि यथार्थ में भारत में कार्यपालिका की स्थिति को देखते हुए यह जरूरी है कि न्यायपालिका, कार्यपालिका के सक्रियतावाद और विधिक निर्णय में न्यायिक हस्तक्षेप करे। उन्होंने महसूस करते हुए कहा कि दीर्घकाल में मृत्युशास्ति की अवधारणा की गारंटी के लिए जनमत का प्रभाव काफी नहीं होगा और इस दिशा में न्यायपालिका तथा कार्यपालिका मृत्युशास्ति के समापन के लिए कार्यवाही कर सकती है। यह फ्रांस, ब्रिटेन और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों की तुलना में एक ठोस घटना होगी। इन देशों ने मृत्युदण्ड समाप्त कर दिया है लेकिन वहाँ की जनता समयानुसार मृत्युदण्ड की माँग करती रही और अंततः मृत्युशास्ति अमेरिका में भी समाप्त हो जायेगी। उन्होंने कहा कि यदि मृत्युशास्ति के तत्व की सांवैधानिकता पर उच्चतम

न्यायालय चिपका न रहे तथापि इस सम्बन्ध में अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के साहस की प्रशंसा की जानी चाहिए जो उसने 18 वर्ष से कम के अपराधियों के लिए मृत्युशास्ति समाप्त करके किया। इस सम्बन्ध में उसका साइमन्स में 2005 का निर्णय दृष्टव्य है। भारत अभी भी किशोरों को मृत्युदण्ड देने के अधिकार का प्रयोग कर रहा है। उन्होंने अपने निष्कर्ष में आवश्यक रूप से भारत को मृत्युशास्ति के समापन के सम्बन्ध में विकसित होने की आवश्यकता की अपेक्षा की।

प्राचीन समय से लेकर आज तक मृत्युदण्ड दिये जाने का आधार हत्या और जघन्य अपराध ही रहे हैं। भारत के संदर्भ में प्राचीनकाल में मृत्युदण्ड व्यवस्था भी हत्या और जघन्य अपराधों में ही दिये जाने की रही है। मुगलकाल में भी मृत्युदण्ड दिये जाने की व्यवस्था मुस्लिम दण्ड विधि के अन्तर्गत स्थापित थी और इसमें भी मृत्युदण्ड एक क्रूरतम दण्ड के रूप में दिया जाता था और इस काल में भी मृत्युदण्ड दिये जाने का अपराध हत्या और संगीन अपराध ही होते थे। भारत की प्राचीन काल की मृत्युदण्ड व्यवस्था और मुगलकाल की मृत्युदण्ड व्यवस्था के पश्चात् तीसरा स्थान ब्रिटिशकाल में मृत्युदण्ड व्यवस्था का आता है इसमें भी ब्रिटिश दण्ड विधि की स्थापना ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापना वर्ष सन् 1600 में की गई थी और इस काल में भी हत्या तथा जघन्य संगीन अपराधों के लिए ही मृत्युदण्ड दिये जाने की व्यवस्था जारी रखी गई। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मृत्युदण्ड दिये जाने की प्रमाणिकता सामने आती है। प्राचीन यूनानी, मिश्र, चीनी, अमेरिका और अन्य देशों में भी मृत्युदण्ड का प्रचलन हत्या तथा संगीन अपराधों में ही रखा।

इस प्रकार वर्ष 1977 में 6 देशों ने इसे निषेध किया वर्तमान स्थिति में इन देशों की संख्या 95 हुई तथा 9 देशों ने इसे अन्य सभी अपराधों के लिए निषेध कर दिया। पिछले 10 वर्षो में इसे 37 देशों ने मृत्युदण्ड से किसी को आरोपित नहीं किया। अन्य 58 देशों ने इसे पूरी तरह लागू किया हुआ है। एमनेस्टी इंटरनेशनल के अनुसार सन् 2009 में 18 देशों ने कम से कम 714 मृत्युदण्ड दिये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि मृत्युदण्ड की प्राचीन व्यवस्थाओं को समेटे हुए द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त मृत्युदण्ड के आधारों पर किये गये तीव्र परिवर्तनों पर दृष्टिपात कर कीमो सुआमिनेन द्वारा निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि अपराध के सम्बन्ध में कठोर होना नहीं चलता है क्योंकि पश्चिमी देशों संभवतः पूरे विश्व में अत्यन्त हिंसात्मक वह देश हैं जो मृत्युशास्ति का चलन अपनाये हुए हैं और सामान्यतः सबसे अधिक नियम और दण्ड रखते हैं। अरूणजीव सिंह वालिया द्वारा न्याय की दुलर्भ से दुलर्भतम् श्रेणी में ही मृत्युदण्ड की संस्तुति का पक्ष रखा है।[15]

आकाश नागर एवं चानन परवानी ने भी प्राचीन एवं आज तक की विश्व स्तरीय मृत्युदण्ड व्यवस्थाओं का संज्ञान लेते हुए मृत्युदण्ड के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अभिकथन की आवश्यकता पर जोर दिया।

अंजली ठाकुर द्वारा मृत्युदण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर 5वीं शताब्दी से लेकर वर्तमानकाल मे मृत्युदण्ड के विभिन्न तरीकों एवं उनके औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा गया कि व्यक्ति में बदलाव लाने के लिए आजीवन कारावास की संस्तुति किये जाने और वैश्विक आधार पर भारत को मृत्युदण्ड समाप्त करने पर विचार करने की आवश्यकता है।

राजीव कुमार द्वारा "बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड" विषय पर निष्कर्ष देते हुए बलात्कार के कारणों व उसके परिणामों के परिपेक्ष्य में मृत्युदण्ड की संस्तुति की है। अरूणजीव सिंह वालिया तथा विनय नायडू द्वारा जनमत तथा मृत्युशास्ति पर अध्ययन कर निष्कर्ष में विशेष कर भारत को मृत्युशास्ति के समापन के सम्बन्ध में विकसित होने की आवश्यकता पर बल दिया।

पूर्व में भी भारतीय स्तर पर कुछ महत्वपूर्ण मामले दृष्टांत के योग्य हैं। 30 जनवरी 1948 को महात्मा गाँधी के हत्या के अपराध में 15 नवम्बर 1949 को सभी 9 अभियुक्तों में नाथूराम गोडसे, नाना आप्टे, करकरे, मदनलाल, शंकर किस्तैया, गोपाल गोडसे, डॉक्टर परचुरे और बड़गे में से मिस्टर बड़गे और सावरकर को छोड़कर सभी 7 अभियुक्तों को सजा सुनाई गई जिनमें नाथूराम गोडसे और नाना आप्टे को मृत्युदण्ड दिया गया।[16]

18 फरवरी 2014 को सुप्रीम कोर्ट ने राजीव गाँधी के 15 हत्यारों को दी गई फाँसी की सजा उम्र कैद में बदल दी। [17]

मध्य प्रदेश सीहोर जिले के इच्छावर ब्लाक के कनेरिया गाँव के मगन लाल केस में 11 जून 2010 को मगन लाल ने अपनी पाँच बेटियों को मौत के घाट उतार दिया था। 3 फरवरी 2011 को मध्य प्रदेश की सीहोर अदालत ने उसे फांसी की सजा सुनाई, सुप्रीम कोर्ट द्वारा भी सजा बरकरार रखी गई। यही नहीं 22 जुलाई 2013 को राज्यपाल और राष्ट्रपति द्वारा भी याचिका खारिज कर दी गई। यानि 8 अगस्त 2013 को फाँसी की सजा का दिन तय कर दिया गया अर्थात् 3 साल में प्रकरण का निपटारा कर दिया गया लेकिन 7 अगस्त को फांसी की सजा को लेकर दिल्ली के कुछ प्रगतिशील वकीलों युग चौधरी, ऋषभ संचेती, कॉलीन गोंजालिव्स और सिद्धार्थ ने रात 11 बजे इस पर स्थगन लिया जबकि कैदी मगन लाल को फाँसी देने के लिए लखनऊ से जल्लाद भी बुला लिये गये थे। भारत में इस केस में यह अनूठा स्थगनादेश ही माना जायेगा।[18]

अमेरिका का कार्लोस डेलुना केस – अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका के कार्लोस डेलुना के फांसी की सजा के आगे एक अनुत्तरित प्रश्न बनकर खडा है और बार–बार उन्हें यह चेताता है कि कहीं इस गलत न्याय के चक्कर में किसी निर्दोष को सजा तो नहीं दे रहे हैं। 1983 में डेलुना अभी सिर्फ 20 वर्ष का था जब उसे वांडा लोपेज नाम की नौजवान महिला की हत्या के आरोप में अमेरिका के टेक्सास राज्य में गिरफ्तार किया गया। अदालत ने उसे दोषी पाया और मृत्युदण्ड सुना दिया। 8 दिसम्बर 1989 को सुई लगाकर उसे मौत के घाट उतार दिया गया। मुकदमे के दौरान डेलुना और उसके वकील बार–बार कोर्ट को बताते रहे कि लोपेज की हत्या उसने नहीं बल्कि उससे मिलते–जुलते शारीरिक गठन वाले कार्लोस हर्नादेज नाम के व्यक्ति ने की है। मगर उनकी

दलीलें ठुकरा दी गई अब कोलम्बिया विश्वविद्यालय के कानून विभाग के एक अध्ययन से यह सामने आया है कि डेलुना सच बोल रहा था यानि उसको दी गई मृत्युदण्ड की सजा गलत थी परन्तु अब कुछ नहीं हो सकता है क्योंकि डेलुना मर चुका है। दुनिया का अनूठा निर्णय हो चुका है। यह दुनिया का अनूठा निर्णीत मृत्युदंड वाद है। यह निर्णय दंड की गैरवापसीय पराकाष्ठा को सिद्ध करता है।[19]

मृत्युदण्ड की समाप्ति पर भारतीय संदर्भ लिया जाये तो भारत में मृत्युदण्ड को दंड की पराकाष्ठा मानते हुए भारत के माननीय सांसदों द्वारा प्रथम बार लोकसभा में सन् 1949 में मृत्युदंड की समाप्ति के प्रस्ताव रखे जाने का प्रारम्भ हुआ। तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने समयानुकूल न होने के आधार पर अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् 1952 और 1954 में भारतीय दंड संहिता में संशोधन के समय भी मृत्युदण्ड की समाप्ति की आवाज उठाई गई लेकिन इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। 1956 में मुकुन्द लाल अग्रवाल द्वारा लोकसभा में रखा गया मृत्युदण्ड समाप्ति का प्रस्ताव भी पारित नहीं हो सका। 1958 में विख्यात सिने अभिनेता पृथ्वीराज कपूर ने ऐसा ही एक विधेयक राज्यसभा में पेश किया जो पंडित गोविन्द वल्लभ पंत के अनुरोध पर वापस ले लिया गया। तत्पश्चात् 25 अगस्त 1961 को श्रीमती सावित्री निगम द्वारा मृत्युदण्ड समाप्त किये जाने सम्बन्धी विधेयक राज्यसभा के पटल पर रखा गया जिसे अस्वीकार कर दिया गया। सांसद रघुनाथ सिंह ने मृत्युदण्ड समाप्त करने का प्रश्न दिनांक 21 अप्रैल 1962 को लोकसभा में उठाया जिस पर बहस के बाद यह विचार हेतु विधि आयोग को सौंपने का निर्णय लिया गया परिणामतः सन् 1963 में यह प्रश्न विधि आयोग को सौंप दिया गया।[20]

सन् 1961 में दिल्ली में आयोजित दंड विधि पर आयोजित संगोष्ठी भी मृत्युदंड को समाप्त न किये जाने के पक्ष में ही समाप्त हुई। सन् 1982 में दंड विधि पर अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में भी मृत्युदण्ड के औचित्य पर अन्य विधि वेत्ताओं के अतिरिक्त पूर्व न्यायधीश कृष्ण अय्यर द्वारा मृत्युदंड को समाप्त किये जाने का प्रस्ताव भी अस्वीकार्य रहा तथा मृत्युदंड का प्रयोग विरले मामलों में ही किया जाये, संगोष्ठी का अंतिम निष्कर्ष रहा। दंड विधि की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस के इस आयोजन में अध्यक्षीय भाषण करते हुए तत्कालीन माननीय उपराष्ट्रपति श्री हिदायतुल्ला जो उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायधीश भी रह चुके ने मृत्युदंड विरले मामलों में ही दिया जाये इस सिद्धान्त को ही व्यवहारिक बताया।

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चाहे महात्मा गाँधी के 9 हत्यारों में से करकरे, मदनलाल, शंकर किस्तैया, गोपाल गोडसे, डाक्टर परचुरे को आजीवन कारावास तथा नाथूराम गोडसे और नाना आप्टे को 15 नवम्बर 1949 को फांसी दिया जाना हो, चाहे पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के हत्यारे को मृत्युदंड दिया जाना हो, चाहे सुप्रीम कोर्ट द्वारा पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के हत्यारों को मृत्युदंड दिये जाने का निर्णय हो। चाहे इस निर्णय को बाद में मृत्युदंड की तिथि 9 सितम्बर 2011 निर्धारित होने के उपरान्त भी निर्णय को आजीवन कारावास में बदलना हो, चाहे 12 नवम्बर 2013 को उत्तर कोरिया का टी0वी0 कार्यक्रमों को चोरी–छिपे देखने के अपराध में उत्तर कोरिया द्वारा 80 लोगों को सरेआम फांसी दिया जाना हो, चाहे 8 जुलाई 2013 को चीन के पूर्व प्रधानमंत्री लियू झिजन को भ्रष्टाचार और सत्ता का दुरूपयोग मामले में मौत की सजा सुनाया जाना हो, चाहे ईरान के अमेरिकी जासूस को 28 दिसम्बर 2011 को मृत्युदंड की मांग हो। मृत्युदंड के बारे में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बानकी मून ने बढ़ते मृत्युदंड के विरोध का स्वागत करते हुए चिंता जताई कि कुछ देशों में अक्सर अन्तर्राष्ट्रीय मानकों का उल्लंघन करके मौत की सजा दी जाती है।[21]

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपरोक्त सभी मृत्युदंड से सम्बन्धित तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि विरल से विरलतम मामलों में ही दंड की पराकाष्ठा अर्थात् मृत्युदंड दिया जाना उचित होगा चूंकि एक बार अमेरिका के कार्लोस डेलुना की भांति मृत्युदंड किसी गैर अपराधी को दे दिये जाने से वह गैर वापसीय स्थिति हो जायेगी अर्थात् उसका कोई विकल्प शेष नहीं बचेगा क्योंकि वह निर्दोष व्यक्ति मृत्युदंड पाकर जीवन समाप्त कर मर चुका होगा। ऐसे में अमेरिका के कार्लोस डेलुना केस की भाँति वास्तविक अपराधी का पता चलने पर भी उसे मृत्युदंड नहीं दिया जा सकेगा। ऐसी स्थिति में वैश्विक स्तर पर दंड की पराकाष्ठा (मृत्युदंड) के विरूद्ध अर्थात् समाप्ति के वातावरण में भारत जैसे धार्मिक अस्तित्व वाले देश को मृत्युदंड जैसे जघन्यतम दंड को न दिये जाने की वैकल्पिक स्थिति के रूप में आजीवन कारावास को चुनने का समय आ गया है। हमारे विचार से आजीवन कारावास लम्बे समय की अवधि का कारावास है जिसका प्रभाव अपराध न करने की नसीहत और किये पर पश्चाताप की स्थिति अपराधी, उसके परिवारजन तथा परिचित क्षेत्र के अलावा आमजनों तक एक बड़ा संदेश छोड़ सकती है और लम्बा प्रभाव देखने को मिल सकता है, जबकि मृत्युदंड दिये जाने से अपराधी की जीवन लीला समाप्त होने के कुछ दिनों पश्चात् ही वह सारी स्थितियां विस्मृत हो जाती हैं जो मृत्युदंड दिये जाने के भय के साथ होती हैं। अतः सुधारात्मक दृष्टिकोण की प्रतिपूर्ति दण्ड की पराकाष्ठा (मृत्युदंड) के स्थान पर आजीवन कारावास से ही सिद्ध होने की संभावना होगी जो एक शांत और स्वाभाविक वातावरण समाज में स्थापित करने में मददगार होगी जो कि सांवैधानिक, विधिक और न्यायिक प्रावधानों की प्रतिपूर्ति होगी।

सन् 1955 में दांडिक संशोधन के पश्चात् हत्या के लिये आजीवन कारावास का दंड एक सामान्य नियम हो गया तथा मृत्युदंड केवल आपवादिक दंड रह गया। सन् 1973 में दंड सहिंता प्रक्रिया की धारा 354 (3) के अन्तर्गत यह स्पष्ट प्रावधानिक है कि मृत्युदंड का आदेश देते समय न्यायाधीश द्वारा इसके कारणों का स्पष्ट उल्लेख किया जाना एक कर्तव्य के रूप में अनिवार्य माना गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को तथा अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह मृत्युदण्ड को क्षमादान दे सकते

हैं तथा मृत्युदण्ड को अन्य दण्ड से संशोधित कर सकते हैं। उनकी शक्ति को न्यायिक जाँच का विषय नहीं माना जायेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मृत्युदण्ड के स्थान पर आजीवन कारावास दिये जाने से महात्मा गाँधी, डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर के विचारों की स्वीकारोक्ति के साथ–साथ 1955 के बाद मृत्युदंड का आजीवन कारावास का विकल्प मृत्युदंड के स्थान पर आजीवन कारावास को ही क्रियान्वित करने में बल मिलेगा तथा साथ ही अनुच्छेद 72 में राष्ट्रपति तथा अनुच्छेद 161 में राजयपाल को मृत्युदंड समाप्त करने अथवा उसके स्थान पर किसी अन्य दंड दिये जाने के सांवैधानिक अधिकार को पर्याप्त राष्ट्रीय स्वाभाविकता मिलेगी और दंड की पराकाष्ठा (मृत्युदंड) ही स्थाई रूप से समाप्त होगी जिसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकार संगठन, एमनेस्टी इंटरनेशनल और मानवाधिकार सम्मेलन लम्बे समय से वैश्विक स्तर पर मृत्युदंड रहित दंड व्यवस्था को स्थापित करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं और कानून में न्यायिक क्षेत्र के लिए गैरवापसीय दंड सदैव के लिये विसर्जित हो जायेगा।

दंड देने का विधिक एवं न्यायिक उद्देश्य भी समाज में सुधार लाने का होता है जिसका प्रारम्भ न्यायिक स्तर पर अभियुक्त से ही होना चाहिए जो कि अभियुक्त को ही मृत्युदंड दिये बिना ही संभव है। जब अभियुक्त को ही मृत्युदंड देकर दंड की पराकाष्ठा के अन्तर्गत समाप्त कर दिया जायेगा तो उसमें सुधार की संभावनाओं की प्रतिपूर्ति किससे और कहाँ से प्रारम्भ की जायेगी? इस उद्देश्य की पूर्ति केवल अभियुक्त को मृत्युदण्ड न देकर आजीवन कारावास देकर ही की जा सकती है। यहाँ महात्मा गाँधी का वह वक्तव्य चरितार्थ होता है जिसमें उन्होंने अपराधी अथवा अभियुक्त में सुधारात्मक दृष्टिकोण उसको आजीवन कारावास देकर उसके जीवित रहने में ही व्यक्त किया था। यहीं नहीं महान संविधान वेत्ता डॉ0 अम्बेडकर ने भी कहा था कि "मैं मृत्युदंड खत्म करने के पक्ष में हूँ जब कहीं कोई व्यक्ति फाँसी पर चढ़ाया जाता है तो वह अकेला व्यक्ति नहीं बल्कि उसके साथ उसके मानव अधिकार भी सूली पर टाँग दिये जाते हैं।"[22]

अतः (क) समाज में मगन लाल केस जिसमें अंतिम क्षणों में अनूठा स्थगनादेश प्राप्त होना दंड की पराकाष्ठा को नकारने की प्रमाणिकता है। (ख) राजीव गाँधी हत्या अभियुक्तों को मृत्युदंड दिये जाने में 11 वर्ष के विलम्ब को आधार मानकर आजीवन कारावास में परिवर्तित कर देना भी दंड की पराकाष्ठा को नकारता है। (ग) अमेरिका का कार्लोस डेलुना केस जिसमें डेलुना को वान्डा लोपेज की हत्या में मृत्युदंड दिये जाने के उपरान्त वास्तविक अभियुक्त कार्लोस हर्नावेज का पता चलने पर भी मृत्युदंड का निर्णय गैरवापसीय रहा यहाँ भी दंड की पराकाष्ठा दर्दनाक स्थिति उत्पन्न करती है। अतः मृत्युदंड की सर्वोत्तम वैकल्पिक स्थिति आजीवन कारावास ही सिद्ध होती है जिससे हम दंड की पराकाष्ठा से बच सकते हैं और 8 दिसम्बर 1989 को अमेरिका के कार्लोस डेलुना के दर्दनाक गैरवापसीय दंड पुनरावृत्ति से भी बच सकते हैं और वैश्विक स्तर पर एमनेस्टी इंटरनेशनल और मानवाधिकारों के मानवतावादी सफल अभियान का हिस्सा बन सकते हैं और अभियुक्तों को भी विधिक और न्यायिक स्तर पर दंड की पराकाष्ठा का शिकार बनाये बिना आजीवन कारावास देकर समाज में सुधार की अपेक्षाओं को पूर्ण कर सांवैधानिक एवं विधिक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अध्याय–14, अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, गोपाल उपाध्याय, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन, पृष्ठ 114*
2. *मानव अधिकार और अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय एक दृष्टिकोण, ओमदत्त विशिष्ट, सलाहकार (मानव जनसंसाधन द्वारा लिखित पुस्तक के अध्याय 5 में वर्णित मानव अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन पृष्ठ 151–155 से उपलब्ध सामग्री, प्रकाशक – टैलेटस कम्बाईन, 46 चौखण्डी, नई दिल्ली–110018, प्रथम संस्करण–2013*
3. *अध्याय–14, अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, गोपाल उपाध्याय, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन, पृष्ठ 114*
4. *रचना लॉ सीरिज पृष्ठ 8 नं0 5, रचना लॉ बुक 'भारतीय दंड संहिता' पृष्ठ संख्या 5–8 लेखक आर0के0 अग्रवाल, प्रमोद कुमार अग्रवाल एडवोकेट, वी0के0 मिश्रा, प्रवक्ता विधि विभाग, बुलेन्द खण्ड विश्वविद्यालय झाँसी, प्रकाशक पायनियर प्रिंटर्स, आगरा।*
5. *रचना लॉ सीरिज पृष्ठ 8 नं0 5, रचना लॉ बुक 'भारतीय दंड संहिता' पृष्ठ संख्या 6–7 लेखक आर0के0 अग्रवाल, प्रमोद कुमार अग्रवाल एडवोकेट, वी0के0 मिश्रा, प्रवक्ता विधि विभाग, बुलेन्द खण्ड विश्वविद्यालय झाँसी, प्रकाशक पायनियर प्रिंटर्स, आगरा।*
6. *रचना लॉ सीरिज पृष्ठ 8 नं0 5, रचना लॉ बुक 'भारतीय दंड संहिता' पृष्ठ संख्या 6–7 लेखक आर0के0 अग्रवाल, प्रमोद कुमार अग्रवाल एडवोकेट, वी0के0 मिश्रा, प्रवक्ता विधि विभाग, बुलेन्द खण्ड विश्वविद्यालय झाँसी, प्रकाशक पायनियर प्रिंटर्स, आगरा।*
7. *मुक्त ज्ञान कोष विकिपीडिया से।*
8. *भगवान बक्श सिंह तथा अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1984, क्रिमिनल लॉ ज. 928 सुप्रीम कोर्ट Contributors – Prashant Kumar Dubey, January 21, 2014 Document ID : AHRC-ART-008-2014-HI, India.*
9. *किम्मो सुआमिनेन, "मृत्यु शास्ति के सम्बन्ध में चार मिथक" क्या समाज फाँसी के फन्दे से बच सकता है। भारत में मृत्यु शास्ति संग्रह से प्रकाशक हयूमन राईटस लॉ नैटवर्क न्यू दिल्ली पृष्ठ 159–164, अरूण जीव सिंह वालिया एवं विनय नायडू द्वारा सम्पादित।*
10. *अरूण जीव सिंह वालिया, "मृत्युदण्ड समाप्ति की राह पर" क्या समाज फाँसी के फन्दे से बच सकता है? भारत में मृत्यु शास्ति संग्रह हयूमन राईटस लॉ नेटवर्क न्यू दिल्ली से प्रकाशित पृष्ठ 99 से 109 अरूण जीव सिंह वालिया द्वारा सम्पादित।*

11. आकाश नागर एवं चानन परवानी, भारत में मृत्युदण्ड – इसके प्रतिरोधात्मक प्रभाव का एक निर्धारण, इंडियन बार रिव्यू वाल्यूम 41(1) 2014 पृष्ठ 171–184
12. अंजली ठाकुर, "मृत्युदण्ड एवं इसकी प्रासंगिकता" इंडियन बार रिव्यू, वाल्यूम 42 (1) 2015 पृष्ठ 161–178
13. राजीव कुमार, "बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड" इंडियन बार रिव्यू वाल्यूम 42(1) 2015 पृष्ठ 119–126
14. जमनत तथा मृत्यु शास्ति मार्ग अवरूद्ध होने की दशा में समापन का पथ, लेखक लारेन मॉरिस एवं विनय नायडू, अरूण जीव सिंह वालिया – क्या समाज फाँसी के फन्दे से बच सकता है? भारत में मृत्युशास्ति।
15. मुक्त ज्ञान कोष विकिपीडिया से।
16. नाथूराम गोडसे के सगे भाई गोपाल गोडसे द्वारा लिखित पुलिस "गाँधी वध और मैं के पृष्ठ संख्या 211–212 प्रकाशक सूर्य भारती प्रकाशन, 2596 नई सड़क, दिल्ली – 110–006 मुद्रक एस0एन0 प्रिंटर्स, एम–72 नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032 संस्करण–2005
17. दैनिक हिन्दुस्तान (हिन्दी) के पृष्ठ 1 पर प्रकाशित 19 फरवरी 2014
18. गोपाल उपाध्याय द्वारा लिखित "अपराधशास्त्र एवं दण्डशास्त्र" प्रकाशक – सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, विधि पुस्तकों के प्रकाशक एवं विक्रेता 107 दरभंगा कैसल, इलाहाबाद।
19. प्रकाशक – सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी 30डी/1 मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद।
20. 20. गोपाल उपाध्याय द्वारा लिखित "अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन" के पृष्ठ संख्या 117 सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन विधि पुस्तकों के प्रकाशक एवं विक्रेता 107 दरभंगा कैसल, इलाहाबाद।
21. लॉस्ट अपडेटेड, शुक्रवार 13 सितम्बर 2013।
22. भगवान बक्श सिंह तथा अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1984 क्रिमनल लॉ जजमेंट, 928 सुप्रीम कोर्ट Contributors – Prashant Kumar Dubey, January 21, 2014 Document ID: AHRC-ART-008-2014-HI, India